* ॐ *

अनुभूति गीत

मामराज शर्मा "हर्षित"

श्री खेमका साहित्य-सदन

मोरगञ्ज, सहारनपुर

प्रकाशक—
श्री खेमका साहित्य-सदन
मोरगञ्ज, सहारनपुर ।

प्रथम संस्करण दिसम्बर १९४०

मूल्य दस आने

मुद्रक—
आशाराम खतरी
रॉयल प्रिंटिङ्ग प्रेस, सहारनपुर ।

यह पुस्तक तारा मार्का व्हाइट प्रिंटिङ्ग २०×३०=२८ पौंड
कागज़ पर छपी ।

प्रकाशक की ओर से—

आज श्री "हर्षित" जी की विभिन्न कृतियों में से यह एक लघु कृति आपके सामने उपस्थित करते हुए परम हर्ष होरहा है।

हमें आशा-ही नहीं अपितु विश्वास है कि हिन्दी-संसार इस कृति को अपनी-ही एक चीज़ समझेगा और इसे अपनाकर हमें उत्साहित एवं कृतकृत्य करेगा।

यदि प्रेमी पाठकों एवं मित्रों का वाञ्छनीय सहयोग रहा तो निकट भविष्य में हमें विभिन्न प्रकार की अन्यान्य कृतियों के साथ पुनः आपके सामने उपस्थित होने का शुभ अवसर शीघ्र-ही प्राप्त होगा।

प्रकाशन-कार्य से अनभिज्ञ होने के नाते त्रुटियों के लिये क्षमा !

विनीत—

खेमका बन्धु

हृदय-हिलोर-श्रेणी का

:: प्रथम सीकर ::



स्वर्गीय वैद्य श्री मेवाराम जी शर्मा 'भ्रमर'

समर्पण

देव !

जब सान्ध्य-तिमिर के क्षीण आवरण में अम्बर के दीप जगमगा उठे थे, तब उस वेला में मन्द-गामिनी सरिता के पुलिन पर पड़ी हुई शिला पर बैठे आपने कहा था—"सोऽहमस्मि" व्यष्टि-समष्टि में अभिन्न रूप से रहने वाला जो तू है वही मैं हूँ। इसी अनुभूति की विशाल भित्ती पर विश्व स्थिर है।

मेरे परमपूज्य देव !

उसी अनुभूति की राह में उपलब्ध ये क्षुद्र भाव-सुमन आपके पद-पद्मों पर अर्पित हैं।

अनुज—

"हर्षित"

काव्य-परिचय

कवि का मन जब आलोक-रश्मियों से झिल-मिला उठता है और जब उसकी कल्पना हर्ष की विभिन्न हिलोरों में उन्मादमयी-सी झूम उठती है, तब उसकी अपनी साधना वैयक्तिक होते हुए भी समष्टि के आत्मा-ऽनुरञ्जन का एक महत्व-पूर्ण साधन बन जाती है।

कवि अपने इस चरम विकास में निरन्तर प्रगतिशील रहता है। उसकी उस अनुपमेय काव्य-रसधारा से आत्मानुभूति स्पन्दित हो उठती है। वह अपने पूर्ण लक्ष्य का अनुगामी हो समस्त तत्वों के पीछे रहने वाली मूल सत्ता का विश्लेषण करता है। इस प्रकार कवि आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुनिया से दूर प्रकाशमय आध्यात्मिक जगत में अपने आपको पाता है। और इस प्रकार उसका वह अनिर्वचनीय आनन्द एक लोकोत्तर

का

आनन्ददायिनी, उज्ज्वल एवं रस-पूर्ण भावमयी शब्द-सृष्टि का निर्माण करता है।

कवि को उस समय अन्तःप्रकृति तथा स्वाऽनुभूति का एक ऐसा अवलम्ब प्राप्त होजाता है कि जिससे मनस्तत्व का उसका अपना विज्ञान--उसकी अपनी वाह्य प्रकृति—को अपने में लीन कर लेता है, तभी वह नूतन विचारधारा को अपनी विचित्र शैली द्वारा जन्म देता है। मानस को आह्लादित कर देने वाले एसे शब्द-चित्रों की सरस सृष्टि को ही आदि से काव्य मानते आये हैं।

कवि की अपनी दृष्टि में यह पुस्तक पागलपन में लिखे हुए कुछ गीतों का एक एलबम है, किन्तु कवि का पागलपन उसकी एक आत्माभिव्यञ्जना है, जिसमें "अणोरणीयान महतोमहीयान" का तत्व निभृत रहता है।

काव्य-जगत में "अनुभूति गीत" को कौन-सा स्थान प्राप्त होगा, इसका निर्णय तो सहृदय पाठकों पर ही निर्भर है। मैं तो केवल कवि की कुछ रचनाओं के कुछ अंशों का यथाज्ञान प्रदर्शन कराने चला हूँ। मैं एक लघुमति उन उच्च भावनाओं से जो यत्किञ्चित रस प्राप्त कर पाया हूँ, उसे भी यथावत अङ्कित कर सहृदय पाठकों के समक्ष रख देने का साहस मुझ में नहीं एवं नहीं मेरे शब्दों में इतनी क्षमता है कि वह काव्य की आत्मा का पूर्ण परिचय दे सके।

प्राणीमात्र स्वभावतः सौन्दर्य का उपासक है, क्योंकि सौन्दर्य ईश्वर की प्राकृत-कला का कमनीय रूप है और कमनीयता वह आकर्षण है कि जिससे विश्व के प्राण बरबस उस ओर आकर्षित होजाते हैं। प्रकृति में मानव-जीवन का तथ्य छिपा है जो अनन्त धाराओं में निरन्तर प्रवाहित होरहा है। जब प्रकृति के सौन्दर्य की ओर कवि की प्रगतिशील चित्तवृत्तियाँ खिंची चली जाती हैं तब वह उसकी ओर देख कर आत्म-विभोर होजाता है। तदनन्तर उसकी सरस अन्तर-भूमि में कवि की कलात्मक-तूलिका नाच उठती है तथा उसकी सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों को महती अव्यक्त शक्ति का आभास होजाता है और तब वह कह उठता है—

री ! अपरिमित मंजुला छवि,
आँक लेता है तुम्हें कवि,
चेतना-सी उर-पटल पर, साधना की तूलिका ले।

—पृष्ठ दो

केवल प्रकृति-सौन्दर्य-निरीक्षण ही कवि को अभीष्ट नहीं, किन्तु वह उसमें शोभामयी मानवीय भावनाओं के जागृत रूप को आलोकित होते देखता है। उसके कर्ण-कुहर प्रकृति के अन्तर-प्राणों से प्रेमालाप का गुञ्जन सुन रस-विभोर होजाते हैं तथा असीम आह्लाद, अनुपम जीवन एवं प्रणय-पूर्ण स्नेह, कैशोर और यौवन

की रँगरलियाँ यह सभी कुछ उसकी आँखों में नाच उठते हैं। ऐसे ही एक भावनामय व्यञ्जनात्मक चित्रण का उल्लेख देखिये, जहाँ किशोरी रजनीगन्धा नवयौवन के आरम्भिक क्षणों में एक विचित्र उन्माद का स्पर्श पा पुलकित हो कह उठती है—

मैं रजनीगन्धा फूली।
पी यौवन-मदिरा मधुर सहज—
मैं अपने-ही में भूली। —पृष्ठ पन्द्रह

कल्याणी प्रकृति-बाला नव-वधू के रूप में तरुणी-सी मुस्करा रही है। उसकी आभा का चित्र अपने में कितना पूर्ण है—

ले मदिर उर में उजाला,
पहिन सुरभित सुमन-माला।
हरित अवगुण्ठन उठा, कुछ—
हँस रही है प्रकृति-बाला॥—पृष्ठ चौंतीस

धूमिल बन-प्रान्तर के पथ पर पर्वतीया रम्य छवि में अस्त होती हुई किरणों की वीणा पर गाते हुए सुन्दरी शैल-सन्ध्या का चित्रण मानस में एक गुदगुदी सी पैदा कर देता है—

भग्न किरण-वीणा को छू कर, गा, सन्ध्या मुस्कायी।
बन-प्रान्तर के धूमिल पथ पर, तमो-यवनिका छायी॥
—पृष्ठ चार

मानव की मनोवृत्तियों का माप-तौल करना बहुत गहरा विज्ञान है क्योंकि वृत्तियाँ स्वभावतः त्रिगुणात्मिका होती हैं। अतः उनका अन्वेषण कर लेना-ही सफल साधना का परिचय है और अङ्कित कर लेना-ही कला की उपयोगिता है। इन वृत्तियों से ही मानव-चरित्र का निर्माण होता है, जिसका सम्बन्ध कर्म से अविच्छिन्न है और कर्म-ही नियति का उद्गम स्थान है। मानव की वृत्तियाँ कल्पनामयी होकर अमित आशाओं को अंकुरित करती हैं और जब ये आशायें फलीभूत न होकर निराशा में परिणत होजाती हैं तब मानव एक गहरी अन्तर्वेदना से छटपटा उठता है और निर्मम विधि-विधान से दलिता-सी उसकी अन्तर्भावनायें परवशता का अनुभव कर कह उठती हैं—

मैंने जीवन में क्या पाया,
गहन दुखों की गहरी छाया।
आशाओं का एक सुनहरा—
था मैंने संसार बसाया॥
किन्तु न मिल पाया वह मुझ को,
कितनी उलटी दैव-प्रथा है?

—पृष्ठ बावन

कवि ने बहुधा रचनाओं में नियतिवाद का समुल्लेख किया है, किन्तु वह कहीं-कहीं विधि-विधान की अपेक्षा

आत्म-विश्वास के पथ पर दृढ़ता के साथ प्रगतिशील भी है—

जीवन-मृत्यु चक्र है मेरा ,
निहित जहाँ है शाम-सबेरा ।
स्वयं विधाता हूँ बन्धन का ,
स्वयं उसे कर देता हूँ श्लथ ॥–पृष्ठ छयालीस

वह स्वयं बन्धन में बँध कर उसे ढीला कर देने में ही सन्तुष्ट हो, ऐसी बात नहीं है । कवि का लक्ष्य तो अपनी अन्तःप्रकृति पर पूर्ण विजय पाकर ईश्वरत्व में तन्मय होना है—

तिमिर से, आलोक से क्या ?
हर्ष से औ' शोक से क्या ?
मैं तुरीयातीत, मुझ को—
लोक से, परलोक से क्या ? —पृष्ठ बानवें

साधना की एकान्त कुटी के वातायनों से कवि "हर्षित" ने यह सब कुछ झाँका है और जैसा, जिस रूप में, जो कुछ भी वह देख पाया, उसने अपनी आत्माऽनुभूति की तूलिका द्वारा सृजन किया है और वही आपके समक्ष है ।

खेमका-निकुञ्ज, सहारनपुर
दीपमालिका बुधवार
३०—१०—४०

—सेवकराम खेमका 'मुदित'

विषय-सूची

अनुभूति गीत

अनुभूति

अनुभूति विश्व की रानी ।
अन्तर्द्वन्द्वों की निधि–सी, कवि के रहस्य की वाणी ॥

कल्पनापटी पर उतरी ,
भावना एक माया–सी ।
पग–पग पर प्रसरित–सी है ,
जग–जीवन की छाया–सी ।

अति रम्य सरस भावों से, अपनाते जिसको प्राणी ।
अनुभूति विश्व की रानी ॥

मुस्काती–सी मानस में ,
कुछ जग की व्यथा छिपाये ।
ले सूनी करुण कहानी ,
कुछ हँसते चित्र बिछाये ।

सन्देश प्रकृति से पाये, आई रसमय कल्याणी ।
अनुभूति विश्व की रानी ॥

अनन्त छवि

धन्य री, आलोक बाले !
लीन गहरे तिमिर से ये, कोटि जग तुमने निकाले !
धन्य री, आलोक बाले !
यह अनन्त अपार माया,
यह असीम विशाल छाया,
सब तुम्हीं से स्फुट हुई है, विश्व का बन्धन संभाले !
धन्य री, आलोक बाले !
सफल सबला स्थिति–मयी हो,
तुम उषा–सी स्मिति–मयी हो,
रम रही शृङ्गार लहरों–सी, मृदुल उन्माद पाले !
धन्य री, आलोक बाले !
परस्पर गति प्राप्त रञ्जित,
होरहे अणु–अणु तरङ्गित,
मुस्करा कर मौन तुमने, जो अगण्य सहास ढाले !
धन्य री, आलोक बाले !
री ! अपरिमित मंजुला छवि,
आंक लेता है तुम्हें कवि,
चेतना–सी उर–पटल पर, साधना की तूलिका ले !
धन्य री, आलोक बाले !

शैल सन्ध्या

नील गगन के एक छोर से ,
उतरी सन्ध्या रानी ।
कलरव–मयी विनोद–रञ्जिता, मोहमयी माया–सी ।
तिमिराञ्चल बिखराती आयी, स्मित श्यामा छाया–सी ॥
तरु–तरु की मुकुलित कलियों ने, हँस–हँस शीश झुकाया ।
नीड़–नीड़ से द्रुत कोमलतम, विहगों ने स्तव गाया ॥
रम्य शैलबाला से मिलने ,
कहने मधुर कहानी ।
नील गगन के एक छोर से ,
उतरी सन्ध्या रानी ॥
हँसती हैं ये शैल घाटियां, पहिने नीली चोली ।
चली पवन द्रुत, सुमन सुरभि से, भर सुहासिनी झोली ॥
चूम चरण निर्झर करता है, ताल–ताल पर नर्तन ।
पश्चिम से मुख फेर सूर्य ने, देखा यह अनुवर्तन ॥

अनुभूति गीत

थिरक–थिरक शिखरों पर करती ,
प्रकृति–नटी अगवानी ।
नील गगन के एक छोर से ,
उतरी सन्ध्या रानी ॥

दूर क्षितिज के प्राच्य द्वार से, झाँक निशा ने देखा ।
खिंची जारही है अम्बर में, तिमिरारुण–सी रेखा ॥
जलद–जाल की स्मित आभा से, सुन्दर आनन धोये ।
बन–सुमनों के नव–वृन्तों से, मंजुल हार पिरोये ॥

गिरि–वसुधा प्रमुदित मुस्काती ,
रह–रह कर मनमानी ।
नील गगन के एक छोर से ,
उतरी सन्ध्या रानी ॥

भग्न किरण–वीणा को छूकर, गा, सन्ध्या मुस्कायी ।
बन–प्रान्तर के धूमिल पथ पर, तमो–यवनिका छायी ॥
सुमन सुरभि से पुलकित होते, आते जाते राही ।
निर्निमेष दृग बिछा देखते, यह बेला मधुवाही ॥

बन–बल्लरियों के झूले पर ,
झूम उठे अलि ज्ञानी ।
नील गगन के एक छोर से ,
उतरी सन्ध्या रानी ॥

उनकी स्मृति

है सजग आज उनकी स्मृति ।
अन्तर से परिचित-सी वह, बन्धन की मधुर परिस्थिति ॥

कम्पित उर था, नत मुख पर—
झीना-सा था अवगुण्ठन ।
धीरे से ऊपर उठते—
थे, व्रीड़ा मुकुलित लोचन ॥
कल्पना गगन पर उड़ते ,
अन्तर में था अभिनन्दन ।
पल भर में दो हृदयों का ,
होगया एक था बन्धन ॥

वह रस विभूति-सा कैसा, जीवन था 'अपनी विस्मृति' ।
है सजग आज उनकी स्मृति ॥

अनुभूति गीत

उलझी–सी एक पहेली ,
अन्तस्तल में छाया–सी ।
प्रति पल विचरा करती है ,
उस जीवन की माया–सी ॥
कितना रहस्य है जग में ,
मैं कुछ न समझ पाती हूँ ।
उलझन में फँसी हुई–सी ,
अनुमान किये जाती हूँ ॥
उनके पीछे पागल क्यों, भर जाती उर में विकृति ?
है सजग आज उनकी स्मृति ॥
यह सदन आज सूना है ,
करुणा का साज सजाये ।
हूँ एकाकिनी जहाँ मैं ,
निज अन्तर्व्यथा छिपाये ॥
कितना अखरा करता है ,
जीवन में यह सूनापन ।
है कितना अखरा करता ,
इस सूनेपन में यौवन ॥
दो तार हृदय के हिलते, हिलती भावों की संसृति ।
है सजग आज उनकी स्मृति ॥

कण के प्रति

कण ! कहाँ उड़े जाते हो ?
विस्तृत जीवन की साध लिये, किस पथ पर मँड़राते हो ?
थे किस की स्मृति में चिर विलीन ,
थे किस रहस्य में डूबे ?
या देख विश्व की विषम सृष्टि ,
क्या उन्मन होकर ऊबे ?
किस अभिनव मन्दिर के गवाक्ष—
से, कहाँ निकल भागे हो ?
कितने युग के पश्चात् आज ,
तुम इस प्रकार जागे हो ?
प्रिय ! किस अनन्त की ओर चले, अभिनव अनुभव पाते हो ?
कण ! कहाँ उड़े जाते हो ?

अनुभूति गीत

क्या इस जग को नश्वर विलोक ,
तुम व्योम–लोक में जाते ?
उस किरण भरे आलोक – देश—
में, अमर बने इठलाते ?
तुम पहुँच रहे हो जहाँ, वहाँ—
तो अव्यय–निधि सञ्चित है ?
तेरे अणु अन्तर की छाया ,
क्या उससे भी परिचित है ?
तुम पवन – यान पर चढ़े प्रभा में, कैसे मुस्काते हो ?
कण ! कहाँ उड़े जाते हो ?
यह व्योम–लोक है परिधि–हीन ,
निरवधि सागर–सा विस्तृत ।
यह तो अपार है अनुपलब्ध ,
जिसमें कुछ भी न परिष्कृत ॥
अणु–से–अणुतर होकर हे कण !
जिस ओर प्रवाहित होगे ।
इसकी विशालता उतनी – ही ,
परिमाण रहित पाओगे ॥
क्या आत्म–साधना के चिन्तन में, नभ–गति अपनाते हो ?
कण ! कहाँ उड़े जाते हो ?

शैल-बाला

मानिनी ! मदिरवदना छवि-सी ,
यौवन का अरुण विहान लिये ।
अलसित-गति धीरे चली कहाँ ?
अधरों में मृदु मुस्कान लिये ॥
भ्रू में विलास का दिये विन्दु, लोचन में भर अनुराग नया ।
सङ्कुचित अनङ्गलता तनु से, बिखराती मदिर पराग नया ॥
लावण्यमयी यौवन लहरें, भरती दिगन्त के अञ्चल में ।
पुलकिता चपल दामिनि-दसने ! भर चली सुरभि पवनाञ्चल में ॥
द्युतिमान रूप पर झीना-सा ,
कोमल श्यामल परिधान लिये ।
रञ्जिनी कनक किरणावलि-सी ,
मदिरा-सा मादक गान लिये ॥
अलसित-गति धीरे चली कहाँ, अधरों में मृदु मुस्कान लिये ?

आलोक–वासिनी बाले ! तुम ,
सागरिका–सा नव–लास भरे ।
चपला–सी चञ्चल चली किधर ?
अणु–अणु में द्रुत उल्लास भरे ॥

तुम कलामयी–सी हासरता, सुषमित वसुधा मकरन्द भरी ।
नित गिरि–विहारिणी प्रेम–प्रभा, यौवन–सर की स्वच्छन्द तरी ॥
कर वासन्ती–सा नव सिंगार, वर्षा–सी सजल विहार भरी ।
रस में करती–सी ओत–प्रोत, चञ्चल मन की आशा–लहरी ॥

अपने जीवन में सित अमाप ,
मधुरस औ' प्रमुद विलास भरे ।
गिरि, कानन में भर नव कम्पन ,
अपने में अमित विकास भरे ॥

चपला–सी चञ्चल चली किधर, अणु-अणु में द्रुत उल्लास भरे ?

गिरि-श्यामल-पथ करती सुषमित ,
मसृण उर में मृदु प्यार लिये ।
किस ओर मुक्त कुन्तले ! चली ,
तनुलता विमल सुकुमार लिये ?

तेरे कर का पा स्पर्श, हिली—मुग्धा–सी हरियाली बन की ।
तेरी चितवन का लास निरख, खिल उठी कली मेरे मन की ॥

अनुभूति गीत

बिखरी अलकों का जाल प्रिये ! भर रहा मयूरों में नर्तन ।
यह सघन बनालि विभोर हुई, अपने में पा, तेरा दर्शन ॥
चुन कली–कली मृदु सुरभि पूर्ण ,
सित मुक्ताओं–सा हार लिये ।
तुम अनुपमेय सस्मित वदने !
जीवन–रस का उपहार लिये ॥
किस ओर मुक्त कुन्तले ! चली, तनुलता विमल सुकुमार लिये ?
तुम सरस निम्नगा–सी बहतीं ,
निर्झरिणी – सी उल्लास – मयी ।
जग का दिल अञ्चल में लेकर ,
किस ओर छिपोगी हास–मयी ?
कर से पकड़े निज चिबुक प्रिये ! जब तुम कुछ-कुछ गम्भीर हुईं ।
उर-सागर की चञ्चल लहरें, अति विचलित और अधीर हुईं ॥
किंकिणी–रव से कलहंसों ने, सुन कर तेरा आह्वान प्रिये !
मुक्ताओं का द्रुत छोड़ अशन, गाया पुलकित मधुगान प्रिये !
मुझ में सामर्थ्य कहाँ ? तुम से—
कुछ प्रश्न करूँ मधुमास–मयी !
मैं भूला अपने में लख कर ,
तेरी छवि पुण्य प्रकाश–मयी ॥
जग का दिल अञ्चल में लेकर, किस ओर छिपोगी हास–मयी ?

रूप

मैं विविध वर्ण हूँ एक रूप ।
विधि की हलकी मसलन पाकर, मैं फूट पड़ा जग में अनूप ॥
जग आत्म–व्यञ्जना में ललाम—
लहराता हूँ बन कर हिलोर ।
हूँ प्रकृति विभव का स्वच्छ धाम,
नित प्रगति–शील रहता विभोर ॥
कण–कण में, रेशे–रेशे में, बिम्बित मेरा कल छविस्तूप ।
यह सूर्य, इन्दु, तारक, रजनी,
सन्ध्या, ऊषा, अरुणिम प्रभात ।
सरिता, पर्वत, सागर, तरुवर,
लतिका, कल सुमन, सुगन्ध वात ॥
इन सब में मेरी स्मिति विशाल, छाया भी है, है और धूप ।
शिशु, तरुण, जरठ की आकृति हूँ,
रहता हूँ शाश्वत प्रगतिशील ।
मैं कोमल हूँ, कठोर भी हूँ,
हँसता भी, रोता भी सलील ॥
है दर्शनीय मेरे-ही से, चर—अचर और यह जग अनूप ।
मैं विविध वर्ण हूँ एक रूप ॥

दीप

करुणा, मेरे दीप रे, जल !
मौन रे, अभिशाप मेरे, व्यथित सूने सदन में जल !
मृदु हृदय का स्नेह ए रे !
प्रणय में बहता निरन्तर ।
गिन रहा तारक गगन के ,
किन्तु मेरा अरस अन्तर—
छा रहा पथ पर अँधेरा, जाग रे, तू जाग प्रतिपल !
प्रणयिनी के मृदुल अधरों—
की, नहीं मुस्कान घर में ।
है न वीणा की मनोहर—
मधुर मादक तान घर में ॥
वेदना के सिन्धु से तूफान उठते किन्तु अविरल !
विभव में मुग्धा न आशायें—
जहाँ प्रिय, खेलती हों !
विश्व की कटु यातनायें—
भी, जहाँ दुख झेलती हों ॥
तू उसी घर का उजाला, अचल हो प्रिय, हो न चञ्चल !
करुणा, मेरे दीप रे, जल !

अनन्त का पथिक

मैं अनन्त का पथिक अकेला ।
　　सूना, यहाँ सभी कुछ सूना,
　　　　सुख है कम, पर दुख है दूना ।
　　सदा देखने में आता है,
　　　　यहाँ नया—ही—नया नमूना ॥
मैं मिल कर भी पृथक चल रहा, लेकर जीवन में अवहेला ।
　　खाकर भव—सागर में गोता,
　　　　साथी के हित मन है रोता ।
　　कह उठता पर स्वयं—'बावले !
　　　　कौन यहाँ कब किस का होता' ?
यह तो माया क्षण—भङ्गुर है, दो दिन का है सारा मेला ।
　　अमित युगों से चलता आया,
　　　　अपने—ही में जलता आया ।
　　चिन्ताओं के गहन विपिन में,
　　　　मौन फूलता फलता आया ॥
बीहड़ बन, दुर्गम घाटी है, नभ में छायी सन्ध्या बेला ।
　　　　　　मैं अनन्त का पथिक अकेला ॥

रजनीगन्धा

मैं रजनीगन्धा फूली ।
पी यौवन-मदिरा सहज मधुर—
मैं अपने-ही में भूली ॥

गूंथ रजत किरणों से वेणी, शरद चन्द्रिका आयी ।
नव-यौवन में रता रञ्जिनी, धीरे से मुस्कायी ॥
श्यामल-वसना प्रकृति हँसी लख, यह शृङ्गार निराला ।
दिग्वधुओं ने द्रुत बिखरा दी, मधुरा मादक हाला ॥
जीवन में रस भर, शाखा पर—
कली-कली हँस भूली ।
मैं रजनीगन्धा फूली ॥

प्रेम-पुलकिता हो जब मैंने, हँसता हिमकर देखा ।
खिंची हृदय के एक छोर पर, मदिर प्रणय की रेखा ॥
नीरव निर्जन-से बन-पथ पर, बिखरी कैसी माया ।
वे आये, मैंने पुलकित हो, मदिर स्पन्दन पाया ॥
क्यों न पवन चुम्बन में सुख, जब—
प्रिय की मधुछवि छूली ।
मैं रजनीगन्धा फूली ॥

लज्जा

सङ्कोच भरी–सी छिपी हुई—
मैं छाऊँ मृदु मुस्कान लिये ।
द्रुत भरे स्पन्दना लहरी–सी ,
उर में मादक मधुगान लिये ॥
मैं इन्द्रजाल–सी सहज सरस, तरुणिमा लिये बनती क्रीड़ा ।
लोचन–पट पर, अधरच्छद पर, छा जाती, जग कहता व्रीड़ा ॥
वीणा की झँकृति–सी रञ्जित, कुछ तरङ्गिता मृदुतान लिये ।
मैं बनूँ किशोरी का यौवन, अन्तर में प्रिय आह्वान लिये ॥
सङ्कोच भरी–सी छिपी हुई—
मैं छाऊँ मृदु मुस्कान लिये ।

अनुभूति गीत

मैं मदिर कला धीरे छाऊँ ,
प्रतिभा — सी ज्योतिर्लास भरे ।
प्रस्फुटिता—सी प्रतिपल रहती ,
नव—अरुण—वर्णिमा हास भरे ॥
हूं क्रिया मोहिनी—सी चपला, रहती अनङ्ग की रानी बन ।
मैं प्रथम प्रणय के मधु—रस में, छलकूँ मृदु आकुल वाणी बन ॥
तरुणी का नव शृङ्गार बनूँ, माया—सा प्रकृत विलास भरे ।
मैं अविदित—सी अवगुण्ठन में, पुलकित होती मधुमास भरे ॥
मैं मदिर कला धीरे छाऊँ ,
प्रतिभा — सी ज्योतिर्लास भरे ।
मैं स्निग्ध कल्पना—सी आती ,
बीते शैशव की याद लिये ।
बन मधुर भावना मदिरा—सी ,
नयनों में नव उन्माद लिये ॥
मैं एक मदिर आकर्षण हूँ, जग-जीवन की राका-रजनी ।
यौवन रस का उपहार भरे, प्रिय के मन की कोमल सजनी ॥
मैं पल—पल रहती प्रगति—शील, मानस में मधुर प्रसाद लिये ।
मैं अरुण उषा—सी जीवन में, छाऊँ पुलकित आह्लाद लिये ॥
मैं स्निग्ध कल्पना—सी आती ,
बीते शैशव की याद लिये ।

टूटा पङ्खा

ओ भग्न व्यजन ! अब कहाँ चले ?
किसकी आघातिक दुरभि सन्धि से, इस प्रकार तुम गये छले ?
हो जीवन से उपराम अरे !
गिर धूलि भरे—से पथ पर ।
सहते जग के आघात कठिन ,
आँसू बिखरा निज दुख पर ॥
इन पथ के धूलि-कणों से मिल ,
कह कर निज करुण कहानी ।
अपने वियोग का उपालम्भ ,
किस को दोगे अज्ञानी ?
कैसे पथिकों के पदत्राण से, प्रति पल पथ पर गये दले ?
ओ भग्न व्यजन ! अब कहाँ चले ?

अनुभूति गीत

क्या स्मृति की चित्र-पटी पर ,
आङ्कित हैं उस युग की रातें ?
उस प्रेम भरी प्रेयसी और—
उस प्रणयी की वे बातें ?
जिसके मृदु कर में शनैः शनैः—
थे, कम्पन का सुख पाते ?
उस रमणी के छूकर कपोल ,
श्रम-स्वेद-विन्दु पी जाते ?
अब किस कठोर अदृष्ट रेख की, ज्वाला में गिर यहाँ जले ?
ओ भग्न व्यजन ! अब कहाँ चले ?

रे ! नभ में कभी जलद अन्तर-
की , देखी विद्युल्लेखा ?
या कभी इन्दु किरणों से मिल-
मिल , देखी रजनी रेखा ?
है यह अनन्त के उस रहस्य—
की, किन्तु ! बलवती माया !
संयोग-विरह के अनुभव का ,
कुछ परिचय इन से पाया ?
जिस की विविध परिस्थितियों के, अनुवर्तन में विश्व पले !
ओ भग्न व्यजन ! अब कहाँ चले ?

पहाड़ी खेत

यह पहाड़ी खेत श्यामल ।
लहलहाते हैं पवन से ,
पा सजलतर मौन कम्पन ।
झूमते झुकते परस्पर ,
समुद करते सिहर चुम्बन ॥
बह रहा है पास में जल ।
यह पहाड़ी खेत श्यामल ॥

अनुभूति गीत

उत्तरोत्तर स्वर्ग के सोपान—
से क्रम-बद्ध रेखा।
मुग्ध हो गिरि-रमणियों ने,
सतत जिनको सरस देखा—

थिरकते-से सहज चञ्चल।
यह पहाड़ी खेत श्यामल॥

अङ्कुरित छवि फूटती है,
प्रति निमिष हरिताभ मन्थर।
शैलबाला के सुवितनित—
से सहज उल्लसित सुन्दर॥

झलकते अविराम अञ्चल।
यह पहाड़ी खेत श्यामल॥

गिरि-तलहटी की सघनतम,
नीलिमा को स्पर्श करते।
पर्वतीया रम्य छवियुत,
प्रति हृदय में हर्ष भरते॥

मुस्कराते सफल प्रतिपल।
यह पहाड़ी खेत श्यामल॥

तितली

तितली ! क्यों बन–बन घूमो ?

पा प्रकृति सुन्दरी से नवीन ,
पंखों में कोमल विविध रङ्ग ।
तुम चित्रपटी–सी उड़ीं मौन ,
अन्तर में ले आशा—उमङ्ग ॥

लख कुसुमलता का मधुर हास ,
बन–बन में रस का मदिर श्रोत ।
छूकर गुलाब का मुख अमोल ,
तुम होती रस में ओत–प्रोत ॥

जीवन की लघुतम परिधि मध्य ,
गातीं सदैव तुम मधुर गीत ।
हो किस रहस्य में अरी ! लीन ,
तुम देख रहीं अपना अतीत ॥

अनुभूति गीत

जीवन के कुछ क्षण यहीं बिता—
इस लतिका पर–ही झूमो ।
तितली ! क्यों बन–बन घूमो ?

कितना सुरभित अधिवास रम्य ,
फल–फूलों का यह अन्तराल ।
स्वच्छन्द विचरतीं रस–विभोर ,
तुम उड़ती फिरतीं डाल–डाल ॥

यह जलद जाल–सा विपिन श्याम ,
तेरी स्मृतियों से भरा आज ।
सम्राज्ञी–सी तू यहाँ नित्य ,
प्रसरित करती है आत्म–राज ॥

तेरा स्पन्दन कितना विनीत ,
कितना अन्तर में रुचिर चाव ।
तू नन्हीं–सी तितली, परन्तु—
कितना सुन्दर तेरा प्रभाव ॥

री ! उड़ो न, जी भर नृत्य करो—
कलियों का मृदु मुख चूमो ।
तितली ! क्यों बन–बन घूमो ?

पिपासा

जागी है मौन पिपासा ।
विक्षुब्ध लिये जीवन में, सम–विषम दशा का पासा ।

भूली – भूली – सी जागी ,
कुछ भिन्न परिस्थितियों में ।
कुछ चली खोजने, मन की—
गहरी चञ्चल गतियों में ॥

निज समता परख रही है, पर मिला न कुछ अपना–सा ।
जागी है मौन पिपासा ॥

अनुभूति गीत

यह जिधर भूल कर जाती ,
कुछ अपना खोकर आती ।
क्षण भर में भूखी ध्वनि-सी ,
अन्तस्तल में छा जाती ॥

बहती अकूल सरिता-सी, कुछ लिये दृगों में आशा ।
जागी है मौन पिपासा ॥

ले हृदय चली, स्मृतियों का—
सम्भार उठाये सूनी ।
कुछ हलकी होने जग में ,
पर मिली वेदना दूनी ॥

संदिग्धा-सी कहती है—'झूठी सुख की परिभाषा' ।
जागी है मौन पिपासा ॥

यह मृग-सी भटक रही है ,
निज सुख के अन्वेषण में ।
सफला न तनिक हो पाती ,
होती हताश क्षण-क्षण में ॥

पर, निज आशा में लय है, छू सकी न जिसे निराशा ।
जागी है मौन पिपासा ॥

देवदासी

करुण मेरा गीत री, सखि !
देखती भीता मृगी – सी ,
समय निज विपरीत री, सखि !

देव मन्दिर के सजनि ! क्यों, बन्द हैं री, द्वार सारे ?
होगये क्यों आज मेरे, भाग्य–नभ के मन्द तारे ?
सजनि ! पूजा थाल देखो—रह गया सज, इन करों में ।
मैं विरहिणी–सी खड़ी हूँ, यह नया शृङ्गार धारे ॥

अनुभूति गीत

प्रिय सकेंगे देख क्या ? इस—
तरुण उरकी प्रीत री, सखि !
करुण मेरा गीत री, सखि !

मानती हूँ प्रेम के आवेश—में सब कुछ भुलाये ।
देवता के द्वार पर व्याकुल सजनि ! ये प्राण आये ॥
किन्तु इसमें दोष अपने, हृदय का कैसे बताऊँ ?
देव-दर्शन के बिना क्षण—भर न जब ये चैन पाये ?

रूठने की किन्तु उनके,
अजब कैसी रीत री, सखि !
करुण मेरा गीत री, सखि !

तीव्र गति-मय साँस हैं री ! हृदय में अतृप्त कम्पन ।
आर्द्र पलकों में अरुण-से, व्यथित मेरे सजनि ! लोचन ॥
आज इन असफल क्षणों की, वेदना में प्राण आहत ।
छटपटाते विकल प्रति पल, पा रहे री, मौन क्रन्दन !

सोचती, क्या हार में भी,
हो सकेगी जीत री, सखि !
करुण मेरा गीत री, सखि !

शरदिन्दु

हे धवल शरद के हिमकर !
तुम विभव भरे आलोक-देश हो, रजत-रश्मि के निर्झर !

नीले-नीले नभ में यह बिखरा—
प्रकाश है तेरा ।
जो समस्त अवनी के उर का ,
करता दूर अँधेरा ॥

अनुभूति गीत

कितने–ही लय–उदित युगों का ,
प्रत्यावर्तन देखा ।
सृष्टि–चक्र की विधि परिमार्जित ,
देखी जीवन – रेखा ॥

सम–विषम परिस्थितियों का तुमने, ताण्डव देखा जी भर !
हे धवल शरद के हिमकर !

प्रिय वियोग की व्याकुलता में ,
चिर–परिचित–से लोचन ।
करुण–व्यथित–से तुम्हें देख कर ,
करते अश्रु विमोचन ॥

विधुर–विश्व की लिये वेदना ,
कम्पित होते मन में ।
आँसू देते हो बिखेर प्रिय !
नीरव से निर्जन में ॥

तथा किसी को दिये प्रणय–सुख, हँसते हो नभ–पथ पर !
हे धवल शरद के हिमकर !

रजनी के विशाल नभ–गृह में ,
ज्योतिर्मय ! तुम आये ।

अनुभूति गीत

तुम्हें देख इठलाती है यह ,
निज शृङ्गार सजाये ॥

शुचि समीर बन–बन में सुरभित ,
नव नर्तन करती है ।
कण–कण पर यह बिछी चाँदनी ,
जीवन–रस भरती है ॥

सुख–दुख का तुम किये समन्वय, आये विष–अमृत भर !
हे धवल शरद के हिमकर !

खिली कुमुदिनी तुम्हें देख—
सङ्कुचिता नलिनी सोई ।
उड़ी चकोरी, चकवी प्रिय से—
हीना, बन में रोई ॥

रजनीगन्धा द्रुत सुरभित–सी ,
सुमन–सुरभि बिखराती ।
सुप्त – विश्व, नीरव – निशीथ ,
निस्तब्ध–प्रकृति इठलाती ॥

उत्सुक तुम्हें देख उमड़ा–सा, ऊपर उठता सागर !
हे धवल शरद के हिमकर !

रानी

आओ, मिल कर डूबें रानी !

जग पर छायी कुहू-निशा है ,
प्रिये ! अँधेरी मौन दिशा है ।
मृग-मरीचिका-से जीवन को ,
और जलाना पाप-तृषा है ॥

अनुभूति गीत

पथ सूना, सूना–सा जग है ,
बरस रहा सब ओर हिमानी !
आओ, मिल कर डूबें रानी !

जीना, जग में अपयश ढोना ,
मौन सिसकना, चिन्तित रोना ।
सजनि ! बना जाता है छलनी ,
व्याकुल उर का कोना–कोना ॥

हमें करेगा मुक्त दुखों से ,
सागर का वह गहरा पानी !
आओ, मिल कर डूबें रानी !

प्रेम भरा यह अपना जीवन ,
कैसे सह लेगा जग का मन ।
चलो प्रिये ! उस प्रेम–लोक में ,
जहाँ न दुनिया का उत्पीड़न !

छोड़ चलें दुनिया के उर पर ,
इस जीवन की करुण कहानी !
आओ, मिल कर डूबें रानी !

पथ के प्रति

पथ ! गये किस ओर ?
शून्य प्रकृति, नीरव अरण्य यह, छाया है तम घोर ?

मैं एकाकी, छूटा साथी, दिग्भ्रम हुआ अधीर ।
निराधार-सा देख रहा हूँ, भर आँखों में नीर ॥

मिला न तेरा छोर !
पथ ! गये किस ओर ?

सँभल न पाता हूँ अपने में, मैं विभीत अविराम ।
शुक्र-रश्मि से कुछ सित-सित-सी, कुछ गहरी-सी श्याम ॥

चमक रही है कोर !
पथ ! गये किस ओर ?

सघन द्रुमों के अन्ध-कूप में, पड़ा हुआ हूँ मौन ।
साथी छूटा, तुम भी छूटे, मुझे सुझाये कौन ?

मैं हूँ दुःख विभोर !
पथ ! गये किस ओर ?

निर्झर

मंजु मेरे अमर निर्झर !

ले मदिर उर में उजाला ,
पहिन सुरभित सुमन-माला ।
हरित अवगुण्ठन उठा, कुछ—
हँस रही है प्रकृति-बाला ॥

देख तुझ में विम्ब अपना ,
छू तुझे कहती मनोहर—
मंजु मेरे अमर निर्झर !

सलज ऊषा थिरक आती ,
अरुण पथ पर मुस्कराती ।
नत-मुखी तेरे हृदय को ,
रूप अपना सौंप जाती ॥

अनुभूति गीत

जब उसे तू चूम लेता ,
बोलती वह मधुरिमा भर—
मंजु मेरे अमर निर्झर !

हरित द्रुम पर शान्त रहती ,
हर्ष में अविराम बहती ।
पुलक तनु कर स्पर्श तेरा ,
विहग—बाला सिहर कहती—

क्यों बिखेरे जारहा रे !
वक्र पथ पर सरल सीकर ?
मंजु मेरे अमर निर्झर !

अमित युग से चल रहा तू ,
उपल से उर दल रहा तू ।
कौन – सी अन्तर्व्यथा है—
सतत जिस में पल रहा तू ॥

क्यों मिटा पाया न अब तक ,
व्यथित अपना करुणतम स्वर ?
मंजु मेरे अमर निर्झर !

जीर्ण वसन

बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !
तेरे जीवन के तार-तार का, हुआ धूलि धूसर कण-कण

श्रम से धुनके ने जब तेरी ,
मंजुल देह सँवारी ।
खिली हृदय में लहराती–सी ,
आशाओं की क्यारी ॥

पाया था तूने नव–जीवन !
बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !

पा ग्रन्थन की विषम यन्त्रणा ,
नये रूप में आया ।
देखा जग ने, अरे ! अपरिमित—
पाई तुझ में माया ॥

करते कितने कर थे स्पर्शन !
बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !

अनुभूति गीत

तू कितना मसृण था, तुझ से—
जग का प्रेम घना था ।
किसी प्रेयसी के मृदु तन का ,
तू उपहार बना था ॥

कोमल—कोमल था तेरा तन !
बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !

मृदु सुकुमार देह पर तूने—
की न्यौछावर काया ।
किन्तु आज तू रहा उसी का—
अपना नहीं, पराया ॥

करता पद—पद का भार वहन !
बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !

कैसा यह परिहास विश्व का ,
कैसी जटिल समस्या ?
कैसी विविध प्रगति जीवन में ,
कितनी विषम तपस्या ?

कैसा यह जग का परिवर्तन ?
बिखरे भू पर हे जीर्ण वसन !

बीता युग

हे प्राण, सखे, हे प्रियतम !

अङ्कित वह उस युग की स्मृति ,
उर में प्रदीप-सी जलती ।
पा कर एकान्त निरन्तर ,
जो और फूलती फलती ॥
जीवन के उन सपनों में ,
कितना मधुमास भरा था ?
अपनी दुनिया का जिन में ,
सुन्दर इतिहास भरा था ॥

अनुभूति गीत

उस युग के वे लघु-लघु क्षण ,
मीठे थे महामनोरम ।
हे प्राण, सखे, हे प्रियतम !

निर्झर के कल—कल रव में ,
कम्पित वीणा—झंकृति में ।
जो मधुरस बहता रहता—
वह था अपनी संसृति में ॥
वह मधुर उमङ्गें उर में ,
कैसी उठती थीं अविरल ?
वह सृष्टि रसमयी मेरी ,
कितनी नूतन थी चञ्चल ॥

थे क्रीड़ा—स्पन्दित क्षण वे—
जीवन की निधि सर्वोत्तम ।
हे प्राण, सखे, हे प्रियतम !

वे चित्र, आँसुओं के अब ,
पर्दे पर आते जाते ।
मेरी समस्त गति—विधि को ,
अपनी स्मृति में उलझाते ॥

अनुभूति गीत -

रूठे, प्रिय ! इस अन्तर को—
सूना कर, चले गये तुम ।
आशङ्कित मन हो प्रियतम !
मिथ्या—ही छले गये तुम ॥

मैं यही सोचती प्रतिक्षण ,
क्यों हो तुम इतने निर्मम ?
हे प्राण, सखे, हे प्रियतम !

नव प्रणय—पवन के झोंके ,
जब आते थे इठलाते ।
तब सहसा गिरि—तृण हिलते ,
मैं हँसती, तुम कुछ पाते ॥
जीवन के वातायन में ,
उन्माद कहीं से आता ।
अर्धोन्मीलित नयनों में—
कुछ अनुपमेय छा जाता ॥

करते थे मीठा अनुभव—
उन सरिता—कूलों में हम ।
हे प्राण, सखे, हे प्रियतम !

गिरि–भ्रमण

गिरि की गहन तलहटी से उड़ ,
नव–पयोद पथ दिखा चले ।
वक्र सर्पिणी–सी थी रेखा ,
जिस पर पग धर, सखा चले ॥

बढ़े चले जाते थे गिरि पर, भूले अपनी मनोव्यथा ।
हँसते और मुस्कराते–से, कहते–कहते सरस कथा ॥
ग्रीष्म–तप्त जग से सुदूर हो, मिला हमें सुविनोद नया ।
द्रुम–द्रुम से पल्लव–पल्लव से, बरस रहा था मोद नया ॥

अनुभूति गीत-

कुछ सामान एक गिरि–बालक—
के सिर पर थे रखा चले ।
गिरि की गहन तलहटी से उड़ ,
नव–पयोद पथ दिखा चले ॥

× × ×

तनिक दूर जाने पर ऊपर ,
सुरभित शीतल हवा मिली ।
एक मित्र हँस बोले सहसा—
'यारो ! दिल की दवा मिली' ॥

टेढ़ी मेढ़ी-सी पगडण्डी—पर पुलकित थे झाड़ खड़े ।
कुछ छोटे-छोटे, क्षुप-विकसित, कुछ सुरभित थे बड़े-बड़े ॥
कहीं करौंदों के पगतल पर, दूर्वा–दल था हरा–हरा ।
समुद बनाली से व्यापक थी, गिरि की सुन्दर वसुन्धरा ॥

प्रति झुरमुट की विलासिनी–सी—
कली–कली, अभिनवा हिली ।
तनिक दूर जाने पर ऊपर ,
सुरभित शीतल हवा मिली ॥

अनुभूति गीत

और तनिक कुछ आगे चल कर ,
चढ़े एक सज्जित पथ पर ।
शिलातीर पर बैठ गये थक ,
मानो सुन्दरतम रथ पर ॥

वहाँ एक निर्झरिणी झरती—थी, कल-कलित निनाद भरे ।
अपने जीवन की असीमता—का, सुख – पूर्ण विषाद भरे ॥
दीख रहे थे दूर–दूर के, गिरि–शिखरों के दृश्य नये ।
वल्लरियों, विटपों से छादित, मानव–से अस्पृश्य नये ॥

पुलकित–वपु मैं बोल उठा यों—
'अब आये इति से अथ पर' ।
और तनिक कुछ आगे चल कर ,
चढ़े एक सज्जित पथ पर ॥

× × ×

मंजुल सुमन खिलखिलाते–से ,
डाल – डाल पर झूल रहे ।
कोमल जिनके स्निग्ध–अङ्क में ,
अलि रस पीकर फूल रहे ॥

रेखाङ्कित–से गिरि–खेतों पर, निर्निमेष दृग बिछा चले ।
उड़ते हुए जलद्–पुञ्जों में, अपना तन हम छिपा चले ॥
नव–मधुमास सरस–वर्षा के—सङ्गम पर, भावुक मन हम ।
नीड़-नीड़ से कल-कल खग-रव, सुनते थे पुलकित मन हम ॥

तुहिन–विन्दुओं से गत–श्रम हो ,
अपनापन थे भूल रहे ।
मंजुल सुमन खिलखिलाते–से ,
डाल – डाल पर झूल रहे ॥

× × ×

गिरि की गहन नीलिमा में था ,
एक सफल शुचि ग्राम वहाँ ।
देख उसे बोले—'ऐसा यह ,
दृश्य भला अभिराम कहाँ' ?

फूलों से आवृत शरीर यह, लता–मण्डपों की छाया ।
सुरभित चली समीर ग्राम की, सुरभित कर देती काया ॥
रम्य ग्राम–बालाओं के नव—गीत, सुने कल–हास भरे ।
छल–प्रवञ्चना से सुदूर यह, जीवन चरम विकास भरे ॥

अनुभूति गीत

छवि का स्वर्ण—लोक है मित्रो !
कुछ करलो विश्राम यहाँ ।
गिरि की गहन नीलिमा में था ,
एक सफल शुचि ग्राम वहाँ ॥

× × ×

यहाँ प्रकृति श्यामा खुल खेली ,
अन्तर में उन्माद लिये ।
अलका की रमणियें गा रहीं—
शनैः—शनैः, आह्लाद लिये ॥

देख ग्राम—बालक—दल हमको, आये अति उल्लसित हुए ।
भोले मुख उन सरल बालकों—ने, तन के सित वसन छुए ॥
सुन्दरता के गहन अङ्क में, हमने कुछ विश्राम किया ।
दिव्य-कला की उज्जल निधि का, नव दर्शन अविराम किया ॥

चले पर्यटन कर समाप्त हम ,
एक कसकती याद लिये ।
लौटे मधुरस से ऊसर को ,
मीठा अन्तर्नाद लिये ॥

मेरा पथ

अगम असीम सदा मेरा पथ ।

छूट गये साथी इस जग के ,
बिछुड़े सब आगे इस पग के ।
कितने युग बीते चलते-ही—
थका न मेरा किन्तु मनोरथ ।
अगम असीम सदा मेरा पथ ।।

मानव है मेरी परिभाषा ,
सदा अमर जिसकी अभिलाषा ।
दृढ़ होकर मैं चलता जाता—
तरुण भावनाओं का ले अथ ।
अगम असीम सदा मेरा पथ ।।

जीवन - मृत्यु चक्र है मेरा ,
निहित जहाँ है शाम-सवेरा ।
स्वयं विधाता हूँ बन्धन का—
स्वयं उसे कर देता हूँ श्लथ ।
अगम असीम सदा मेरा पथ ।।

झरोखा

मैं हूँ प्रासाद – नयन !
किन्तु मुझे मानव कहते हैं, सुखकर वातायन !
मैं हूँ प्रासाद – नयन !

आलोकित करता रहता हूँ ,
मैं निकेत का अन्तर ।
मुझे प्राप्त कर भवन सुखद हों ,
छविमय रहें निरन्तर ॥

करता कण भार वहन !
मैं हूँ प्रासाद – नयन !

अनुभूति गीत

पूर्ण इन्दु की शीतल किरणें—
झिलमिल झिलमिल आतीं ।
रूपमयी–सी तन्मय होकर—
जीवन–गीत सुनातीं ॥

मैं उनका करूँ चयन !
मैं हूँ प्रासाद–नयन !

जब अम्बर से रिमझिम-रिमझिम—
बरसा करते बादल ।
तब मुझ में होकर आते हैं—
गृह में सीकर निर्मल ॥

होते जन पुलकित मन !
मैं हूँ प्रासाद–नयन !

मुझ से हों सन्तुष्ट सर्वदा—
ललिता घर की रानी ।
मेरे द्वारा देख कह रहीं—
यातायात कहानी ॥

पा उनका स्पर्श गहन !
मैं हूँ प्रासाद–नयन !

कुछ दिल से

रे हृदय ! क्यों मौन, मेरे—बोल रे ! क्यों मौन ?

विश्व की इस अग्निशाला—
की तपाती तीव्र ज्वाला ।
या भयङ्कर रोग से प्रिय !
पड़ गया है कठिन पाला ॥
आज जो दृग-द्वार खोले ,
देखता उठते फफोले ।
सह रहा प्रिय ! साँस रोके ,
वेदना के विकल शोले ॥

धड़कता तू, किन्तु तुझ में—है बसा प्रिय, कौन ?
बोल रे ! क्यों मौन ?

अनुभूति गीत

तू बना अभिशाप, रे उर ! तू बना अभिशाप ?

झुलसते अरमान तेरे ,
मौन हैं सब गान तेरे ।
शून्य जीवन–घाट है प्रिय !
घुट चले आह्वान तेरे ॥
दर्द से बेचैन रहता ,
सजग अपनी ग्लानि सहता ।
विश्व की आघात–लहरों—
में, निरन्तर खिन्न बहता ॥

क्यों मिला यह ताप ? रे उर ! क्यों मिला यह ताप ?
तू बना अभिशाप ?

× × ×

विविध तेरे रङ्ग, रे दिल ! विविध तेरे रङ्ग !

तू कभी उन्माद पाता ,
तू कभी आह्लाद पाता ।
प्रेम के रे ए प्रमादी !
कभी मौन विषाद पाता ॥

अनुभूति गीत

बस रही तुझ में दुराशा ,
पलट लेता स्वयं पाशा ।
तप्त–सिकता में सलिल को—
खोजती तेरी पिपासा ॥

अजब तेरे ढङ्ग, ए दिल ! अजब तेरे ढङ्ग !
विविध तेरे रङ्ग !

× × ×

तू स्वयं आलोक—था, प्रिय ! तू स्वयं आलोक !

चेतना के रे सजग कण !
अमर विधि के मंजु चित्रण ।
कमल से कोमल बना था ,
स्पन्दना का ले सुमिश्रण ॥
तू स्वयं था स्वच्छ ज्ञानी ,
प्रेरणा का सत्य दानी ।
वासना की रङ्ग–शाला—
में बना पाषाण, मानी !

सह अरे ! अब शोक, निशि दिन, सह अरे ! अब शोक !
तू स्वयं आलोक !

व्यथा

उर में जागी हुई व्यथा है ।

मैंने जीवन में क्या पाया ,
गहन दुखों की गहरी छाया ।
आशाओं का एक सुनहरा—
था मैंने संसार बसाया ॥

किन्तु न मिल पाया वह मुझ को ,
कितनी उलटी दैव–प्रथा है !
उर में जागी हुई व्यथा है ॥

जिसे बनाना चाहूँ अपना ,
वह बन जाता केवल सपना ।
शीतल पथ चलना चाहूँ, पर—
अग्नि–शिखा में पड़ता तपना ॥

सदा वेधने वाले मेरे—
ही प्रमाद की करुण कथा है ।
उर में जागी हुई व्यथा है ॥

मेरी अपनी सरस भावना ,
मेरी अपनी मौन साधना ।
पग–पग पर दे जाती है ये—
ज़हरीली – सी विषम यातना ॥

जिनमें तिल–तिल घुल कर मैंने ,
अपना जीवन आप मथा है ।
उर में जागी हुई व्यथा है ॥

नारी

चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ।

बाँध लेतीं विश्व को दृढ़—
बन्धनों में मुस्करा कर ।
खोल भी देतीं उन्हें तुम ,
सजग–साधन–पथ दिखा कर ॥

स्फूर्ति–सी रमतीं निरन्तर, मधुर मादक गान–सी तुम ।
चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ॥

विश्व की उद्गम–स्थली हो ,
प्रणय की पावन क्षमा हो ।
और तुम संहारिणी भी ,
तिमिर–वसना कटु–अमा हो ॥

विभव–रेखा–केन्द्र भी हो, दृढ़ अनन्त–विधान–सी तुम ।
चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ॥

अनुभूति गीत

नन्दिनी हो, छविमयी हो,
हर्ष – पारावार – सी तुम ।
पुलक–तनु मातृत्व के मृदु—
स्नेह की आगार – सी तुम ॥

स्निग्ध है कण–कण तुम्हारा, विपुल गौरव–ज्ञान–सी तुम ।
चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ॥

मोह से जग को बनातीं—
मोहमय – सा, मोहिनी बन ।
दोहती हो विश्व को निज—
साधना से दोहिनी बन ॥

भावना की अमर निधि हो, गर्विता–सी—मान–सी तुम ।
चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ॥

हो सुधा–सी सरस कोमल,
और निष्ठुर गरल भी हो ।
क्लिष्ट हो पाषाण–सी, पर—
मोम–सी तुम तरल भी हो ॥

सुखद सन्ध्या–सी मनोरम, मृदुल अरुण विहान–सी तुम ।
चेतना–सी जगत–जीवन—में, बनीं वरदान–सी तुम ॥

झाड़ू की सीख

इस निर्मम पथ पर बिखर आज—
रोतीं किन करुण स्वरों में तुम, लख छिन्न-भिन्न निज रुचिर साज ?

यह धवल–धवल प्रासाद खड़े ,
जिनका प्रति दिन कर स्वच्छ हृदय ।
अपने सर्वस्व समर्पण से ,
भरती थीं तुम जिन में परिचय ॥

जब वही तुम्हारा हास करे, कितना कठोर, कटुतर समाज ?
इस निर्मम पथ पर बिखर आज ?

जिस कोमल कर का स्पर्श सुखद ,
तुमने पाया था सहज मचल ।
उसने बिखरा कर तुम्हें यहाँ ,
यह किया अहो ! सत्कार प्रबल (?)

प्रति जन की ठोकर खा-खाकर, तुम आज बचा पायीं न लाज ?
इस निर्मम पथ पर बिखर आज ?

एकाकी

मौन कहाँ रोऊँ एकाकी ?

मेरे जीवन का ध्रुवतारा ,
मुझ से ही कर गया किनारा ।
बरबस मुझे व्यथा–सागर की—
बहा लिये जाती है धारा ॥

अनुभूति गीत

डूब रहा-सा देख रहा हूँ ,
उजड़ चली जीवन की झाँकी ।
मौन कहाँ रोऊँ एकाकी ?

प्राणों की यह आकुल आशा ,
आज हो चली पूर्ण निराशा ।
अन्तर के दर्पण में विम्बित—
झाँक रही है विकल पिपासा ॥

कैसे बुझ पायेगी जग में ,
पागल रूठ चला जब 'साक़ी' ।
मौन कहाँ रोऊँ एकाकी ?

दूर-दूर रह कर कुछ उन्मन ,
भूल-भूल में बीता जीवन ।
उस युग की स्मृतियों में डूबा ,
मैं अतीत का करता दर्शन ॥

किन्तु आज अब क्या होता है ,
जब न रह गया कुछ भी बाक़ी ।
मौन कहाँ रोऊँ एकाकी ?

चाँद

चाँद मेरे पास आया ।
शैल–शिखरों से बिखरता ,
विश्व ने उल्लास पाया ।

चाँदनी द्रुत–गामिनी हो ,
रम्य छवि उल्लासिनी–सी ।
रूपिणी, उत्फुल्ल – वदना ,
फेनिला–सी, हासिनी–सी ॥

चाँद के सँग–सँग उतरती ,
मंजुला आकाश – माया ।
चाँद मेरे पास आया ॥

प्रिय प्रतीक्षारत नवेली—
कुमुदिनी ने द्वार खोला ।
श्यामला मृदु प्रकृति ने लख ,
हृदय में उन्माद घोला ॥

अनुभूति गीत

पवन के कम्पित झकोरों—
में, मलय का हास छाया ।
चाँद मेरे पास आया ॥

त्रिपथगा कल्लोलिनी के ,
तीर पर मैं था रहा रम ।
सलिल की झिलमिल हिलोरों—
में, सुना सङ्गीत मृदुतम ॥

रश्मियों में उड़ किसी ने ,
हृदय का इतिहास गाया ।
चाँद मेरे पास आया ॥

विश्व के इस मदिर सुख का ,
हृदय–पट पर चित्र आँका ।
मधुर इस युग के विभव को ,
विहँस मैंने मौन झाँका ॥

विहरती बन–वीथियों में ,
सरस सुरभि–विलास–काया ।
चाँद मेरे पास आया ॥

अज्ञ पथिक

भूल गया पथ भूल ,
— वह पथ —
भूल गया मैं भूल ।

अज्ञ पथिक हूँ ,
व्यग्र अधिक हूँ ,

अनुभूति गीत

दूर देश है ,
दूर प्रियतमा ।
सोच न पाया ,
कैसी माया ,
रजनी राका ,
होगयी अमा ॥

प्रेम सनी आशायें सारी ,
बनीं आज दुख मूल ।
भूल गया पथ भूल ,
— वह पथ —
भूल गया मैं भूल ॥

सन्ध्या वेला ,
स्वयं अकेला ,
लक्ष हीन-सा—
नीरस जीवन ।
मैं हूँ असफल ,
चिंतित प्रतिपल ,
तन–मन मेरा ,
पाता कम्पन ॥

अनुभूति गीत

झंझा से ऊपर को उड़ती ,
फैल रही है धूल ।
भूल गया पथ भूल ,
— वह पथ —
भूल गया मैं भूल ॥

गहरा सागर ,
बना मृत्युकर ,
डगमग डोले ,
तरणी मेरी ।
उपल बरसते ,
प्राण तरसते ,
घिर आयी है ,
घोर अँधेरी ॥

अन्धकार से ढकी दिशायें ,
देख न पाता कूल ।
भूल गया पथ भूल ,
— वह पथ —
भूल गया मैं भूल ॥

रेखा

तरुणी ने नव रेखा खींची ।

प्रिय से कुछ कहने खड़ी हुई ,
उलझन में सहसा पड़ी हुई ।
कोमल पग-अँगुली से भू पर—
तरुणी ने नव रेखा खींची ।
तरुणी ने नव रेखा खींची ॥

उर में भर प्रिय का प्रेम अमर ,
कुछ दबा दशन से मृदुल अधर ।
अपने विचार में तन्मय-सी—
कर आँखों की पलकें नीची ।
तरुणी ने नव रेखा खींची ॥

प्रिय ने जब कहा कि 'जाऊँगा ,
कुछ दिन बीते पर आऊँगा' ।
कैसे वह उसको जाने दे—
जिसने उर प्रेमलता सींची ।
तरुणी ने नव रेखा खींची ॥

कङ्काल

होगया कङ्काल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

अनुभूति गीत

मधुर यौवन – स्वप्न – उद्गम ,
सब गये प्रिय ! धूलि में रम ।
मौन अपनी वासना में—

जल बना विकराल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

हैं कहाँ प्रासाद तेरे ?
और वह आह्लाद तेरे ?
लख जिसे था मुदित मन, वह—

खिंच गई क्यों खाल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

गर्विता – तरुणी – तरङ्गित—
तू बना था दर्प—रञ्जित ?
चाहता था अमर बनना—

खागया क्यों काल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

अनुभूति गीत

राज–मद के गर्व में तन ,
अरुण–लोचन सिंह–सा बन—
एक दिन था उच्च, पर क्यों—

अब हुआ नत-भाल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

छल किया नैतिक पतन कर ,
मुदित था पर का दमन कर ?
किन्तु अब कैसे हुए सब—

छिन्न माया–जाल ?
— प्राणी ! —
होगया कङ्काल ?

आज तू निष्प्राण प्राणी !
रह गया केवल कहानी !
नियति की यह प्रगति–रेखा—

कर गयी बेहाल ?
— प्राणी ! —
रह गया कङ्काल ?

पथ पर

मैंने पथ पर चलते देखा—

बंध कर सीमा में जीवन की ,
गतिमय रचना है प्रति जन की ।
इस कुम्भकार की माया को—
मैंने पथ पर चलते देखा ॥

चञ्चल जग–आशा–लहरी को ,
सुख–दुखमय जीवन–प्रहरी को ।
निज स्वार्थ भरा संभार लिये—
मैंने पथ पर चलते देखा ॥

नभ में उगते जो यह तारे ,
नभ में ही लय होते सारे ।
इस अति विचित्र–सी सत्ता को—
मैंने पथ पर चलते देखा ॥

मधु–प्रभात

री ! विपिन में छारहा है, सजनि री, मधुमास !

उठ चला री, विश्व से ,
रजनी–पटी का रजत अञ्चल ।
झूमते हैं वन्य – पथ पर ,
गुनगुनाते भ्रमर चञ्चल ॥

अनुभूति गीत

किसलयों से झाँकती हैं ,
पुलक तनु कलिका निरन्तर ।
और विचलित तितलियों का ,
सुरभि से द्रुत सरस अन्तर ॥

सद्य पुलकित कर रहे हैं, पवन के निश्वास !
री ! विपिन में छारहा है, सजनि री, मधुमास !

पल्लवों से उठ रही है ,
सलज–तन्द्रा, द्रुत प्रतिक्षण ।
सुमन – प्यालों से बिखरते—
गन्ध–हाला के मदिर कण ॥
विपिन का शृङ्गार लखने ,
आरही है उषा सस्मित ।
चित्र – रेखा बन रही है ,
पूर्व–दिशि पद–राग–रञ्जित ॥

पा रही है खिल कमलिनी, बाल–रवि का हास !
री ! विपिन में छारहा है, सजनि री, मधुमास !

प्रकृति ने परिमल बिछाये ,
पुष्पचय पर मौन प्रमुदित ।

अनुभूति गीत

मोतियों के हार सम, कल—
ओस के लव झलकते सित ॥
उड़ रही है विटप – नीड़ों—
से सहर्ष विहँग – माला ।
जारही हैं खेत पर उठ ,
अलसिता – सी कृषक – बाला ॥

मौन प्रतिपल उमड़ता – सा, आरहा उल्लास !
री ! विपिन में छारहा है, सजनि री, मधुमास !

सहज यौवन पा, लतायें—
थिरकती – सी डोलती हैं ।
और प्रिय चकवी सरोवर—
के किनारे बोलती हैं ॥
देख री ! इन खिलखिलाते ,
उपवनों की मंजु झाँकी ।
श्यामला–सी अवनि के उर—
पर किसी ने विहँस आँकी ॥

कह रही पिक आज जग में, यह अपूर्व विकास !
री ! विपिन में छारहा है, सजनि री, मधुमास !

किरण !

किरण ! तुम कितनी मृदु सुकुमार !
उतरतीं विहङ्गिनी – सी मौन ,
गगन से भू पर पंख पसार ।
प्रकृति की छाया से मिल मुग्ध, विश्व-पथ पर करतीं अभिसार !
किरण ! तुम कितनी मृदु सुकुमार !

अरी ! आलोकमयी, अभिराम !
विविध लेकर अन्तर में रङ्ग ,
विचरती हो जग में अविराम !
विश्व-जीवन की हो तुम स्रोत, और अपने हित सदा अकाम !
अरी ! आलोकमयी, अभिराम !

चली जाती हो तुम चुपचाप !
किसी के हित बनकर वर, और—
किसी के हित बनकर अभिशाप !
सुनाकर अणु-अणु को मधुगीत, दिखाकर जगको प्रबल प्रताप !
चली जाती हो तुम चुपचाप !

मूक रोदन

सिसकते अरमान मेरे ।
बिलखते गहरी अमां में, चाँदनी के गान मेरे ।
सिसकते अरमान मेरे ॥

झलकती दिल में सुखों के,
संस्मरण की एक रेखा ।
थिरकता जिसमें निरन्तर,
एक-ही वह रूप देखा ॥

उजड़ते-बसते जहाँ पर—चसकते-से प्राण मेरे ।
जागते चिर-वेदना में, सिसकते अरमान मेरे ॥

अनुभूति गीत

व्योम में जैसे धधकती—
जल उठी नक्षत्र – माला ।
आह ! मेरे हृदय में भी ,
धधकती है प्रलय—ज्वाला ॥

आगये अभिशाप बन क्यों ? विगत युग के दान मेरे ।
आज पीड़ा के प्रणय में, सिसकते अरमान मेरे ॥

किस निठुर नश्वर—जगत के ,
व्यर्थ साधन में फँसा मैं ।
सोचता हूँ, बन प्रलापी—
रुदन में भी क्यों हँसा मैं ॥

हा ! विपुल भावी सुखों के, छिन गये अनुमान मेरे ।
मूक अन्तर – भावना में, सिसकते अरमान मेरे ॥

लुट चुका संसार मेरा ,
और वह आधार मेरा ।
बढ़ रहा था विहँस द्रुतगति—
सरस जिस पर प्यार मेरा ॥

किन्तु निष्फल होगये सब, साधनीय विधान मेरे ।
निज दुखों में घुट चले हैं, सिसकते अरमान मेरे ॥

ओ मेघ !

मेघ ! यहाँ तुम क्यों घिर आये ?

अरे ! सदा जीवन भर तपना ,
यही मनुज का परिचय अपना ।
दुखमय है भूतल की रचना ,
क्यों लटके हो अन्तराल में, झूठे जीवन-कण बिखराये ?
मेघ ! यहाँ तुम क्यों घिर आये ?

जीर्ण आज करुणा का अञ्चल ,
लगी आग उर में उच्छृखल ।
भार बना जीवन का प्रतिपल ,
प्राणों को विष-घूँट पिलाने, क्यों फिरते इतने अकुलाये ?
मेघ ! यहाँ तुम क्यों घिर आये ?

कुटिल काल से कवलित जीवन ,
सूख गये आशा के उपवन ।
व्यथा-ग्रस्त सारा मानवपन ,
सुख अतीत के स्वप्न होगये, कौन तुम्हें लखकर इठलाये ?
मेघ ! यहाँ तुम क्यों घिर आये ?

मेरा मन

कैसा है मेरा अपना मन !

निज प्रियजन से नित दुख पाकर ,
उस दुख को सुख–ही–सुख गाकर ।
उनके अविनीत अनादर में, पाता है केवल अपनापन !
कैसा है मेरा अपना मन !

यह दुख–पर–दुख सहता रहता ,
कुछ दूर – दूर बहता रहता ।
कोलाहल से है विकल, किन्तु—कैसे अपनाये सूनापन !
कैसा है मेरा अपना मन !

इसने सीखा जग में तपना ,
कण – कण में देखा सच अपना ।
अपनों की चिन्ता, भला कहो–फिर क्यों न सहे यह आजीवन ?
कैसा है मेरा अपना मन !

खण्डहर

सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !
तू अति विशाल था अति सुन्दर, रह गया किन्तु जर्जर पञ्जर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

अनुभूति गीत

किस असह वेदना में विलीन ,
रोते अन्तर में मौन साध ।
किन पापों की प्रति–छाया से ,
गिरते जाते प्रतिपल अबाध ॥

किस हेतु गिरे प्रासादों के—मीनारों के रे, स्तब्ध शिखर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

फूले – फूले सुरभित उपवन ,
कमलों से सुषुमित सर–तड़ाग ।
मनमोहक विहँगों का कलरव ,
है कहाँ आज एरे, अभाग !

बिखरे पथ पर सूखे दल हैं, केवल ध्वनि जाग रही मर्मर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

इन अर्ध–नग्न प्राचीरों ने ,
देखे कितने वैभव विलास ।
कितने उत्सव, कितने नर्तन—
देखे अधरों पर मृदुल हास ॥

वीणाओं से झंकृत–सी थीं, पर आज बिलखती हैं जर्जर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

अनुभूति गीत

तेरे अन्तर में उदासीन—
ठोकर खाते कितने कपाल ।
वह विहँग पालतू उड़े कहाँ—
पिक, मोर, कीर, चातक, मराल ?

तू कङ्कालों की बस्ती–सा, बिखराये बैठा सित प्रस्तर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

तू स्वर्ग सदृश अनुपम था, पर—
अब रौरव–सा है खण्ड–खण्ड ।
किस महानाश की ज्वाला में ,
जलता है तेरा तन प्रचण्ड ॥

इन सदन-शृंखलाओं के अब, कण-कण हैं देख धूलि-धूसर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

हे महानगर ! तू आज यहाँ ,
बन गया खण्डहर विधि हताश ।
तेरा परिवर्तन देख अरे !
क्षण–क्षण पर होता अविश्वास ॥

अज्ञेय किसी सीमा में बँध, रहते जग में चर और अचर !
सूना, तेरा सूना वैभव, सूनी तेरी प्रिय, कीर्ति अमर !

उलझन

आकुल है क्षण-क्षण जीवन का ।

मेरी-ही यह व्यथित चेतना ,
करती मुझको प्रतिपल शङ्कित ।
मैं ममत्व का प्यासा मानव ,
सुख-दुख के सपनों में अङ्कित ॥

अनुभूति गीत

साँसों के अस्थिर बन्धन में—
है विश्वास न भौतिक तन का ।
आकुल है क्षण–क्षण जीवन का ॥

अपनी–ही स्मृतियों में डूबा—
भूला–सा, विचलित रह जाता ।
उर–सागर की विकल हिलारों—
के प्रवाह में बह–सा जाता ॥

आशाओं की मृगतृष्णा में ,
व्यर्थ भटकना चञ्चल–मन का ।
आकुल है क्षण–क्षण जीवन का ॥

जीवन बीत यहाँ जाता है ,
प्रबल–कल्पनाओं के मग में ।
जिसका कण-कण-ही क्षण-भङ्गुर ,
कहाँ तृप्ति ऐसे इस जग में ?

जग से दूर रहा चाहूँ मैं ,
कैसे पथ पकडूँ साधन का ?
आकुल है क्षण–क्षण जीवन का ॥

क्षोभ

क्या जीवन अनुकूल न होगा ?

यह तम में प्रतिपल खो जाता ,
सन्ध्या के अँधियारे पथ-सा ।
जग-आशङ्का की लहरों में ,
विचलित है असफल-सा, श्लथ-सा ॥

अनुभूति गीत

चिन्ताओं के गहन–विपिन का ,
शूल रहेगा ? फूल न होगा ?
क्या जीवन अनुकूल न होगा ?

पागल – सा अपने से ऊबा ,
व्यर्थ वासना के विकार–सा ।
मानवता का विद्रोही – सा ,
निर्मोही – सा, निराधार – सा ॥

कब तक यह अपवाद रहेगा ?
क्या जग में सुख-मूल न होगा ?
क्या जीवन अनुकूल न होगा ?

राग–द्वेष की विपुल–वह्नि में ,
जलता है जिसका नित अन्तर ।
जो जगती के सरल प्रेम से ,
वञ्चित रहता मूक निरन्तर ॥

अपनी इस कातरता के प्रति ,
क्या अब यह प्रतिकूल न होगा ?
क्या जीवन अनुकूल न होगा ?

एक बार

गा एक बार, हाँ ! एक बार !
वह गीत सखे ! सुनकर जिसको, पाषाण कर उठें चीत्कार !
गा एक बार, हाँ ! एक बार !

आशायें जीवन की अनन्त ,
यह मोक्ष–बन्ध का प्रश्न जटिल ।
सुख–दुख, अरमानों की दुनिया ,
यह मिथ्यात्मक जड़वाद अखिल ॥

सुन तेरी भीषण प्रलय तान, पल भर में हों सब निराधार !
गा एक बार, हाँ ! एक बार !

विधि-कृत-विधान औ' पुण्य-पाप ,
यह दानव–लीला, शक्ति सकल ।
माया का चलता चक्र–विषम ,
लय–उदय क्षार होजायें जल ॥

टूटी वीणा में वह स्वर भर, हिल उठे विश्व का चित्रकार !
गा एक बार, हाँ ! एक बार !

आओ प्रिय !

मंजु–मंजु मदिर सुमन ,
विकसित मृदु–मधुर–वदन ;
कहते हिल विटप छदन—
आओ प्रिय, आओ प्रिय !

छलक उठी प्रेम–रीति ,
कमनीय – कान्त – प्रीति ;
रम्य – राग, रम्य – गीति—
गाओ प्रिय, गाओ प्रिय !

नीला नभ, धवल इन्दु ,
बिखरे मधु–सुरभि–बिन्दु ;
लहराया प्रणय – सिन्धु ,
आओ प्रिय, आओ प्रिय !

देख रम्य – रूप – झलक ,
झपको मत नाथ ! पलक ;
भर-भर मधु-मदिर चसक—
लाओ प्रिय, लाओ प्रिय !

जीवन

बीत गया है बीत ,
— जीवन —
बीत गया है बीत ।

दुख में रत – सा, मर्माहत – सा ,
पा न सका जो सुख की छाया ।
चिन्ता में घुल, होकर व्याकुल ,
बनी शूल – सी कृशतर काया ॥

दिल की बातें रहीं अधूरी ,
निज को सका न जीत ।
बीत गया है बीत ,
— जीवन —
बीत गया है बीत ॥

अनुभूति गीत

गत जीवन की तथा स्वजन की ,
बची न कोई आह ! निशानी ।
मन की आशा, मृदु अभिलाषा ,
फिरा सभी पर गहरा पानी ॥

गूँज रहे कानों में मेरी ,
विकल–हार के गीत ।
बीत गया है बीत ,
— जीवन —
बीत गया है बीत ॥

सोचे सपने हुए न अपने ,
है न जगत में कोई मेरा ।
अगम – व्यथा है, करुण – कथा है ,
दुखद – काल ने आकर घेरा ॥

पल-पल भारी होता जाता ,
आता याद अतीत ।
बीत गया है बीत ,
— जीवन —
बीत गया है बीत ॥

पाषाण

पाषाण ! कहाँ कुटते हो ?
हो पथ पर शतधा खण्ड-खण्ड, निज वैभव से लुटते हो ?
पाषाण ! कहाँ कुटते हो ?

कण-समूह से अणु-अणु बढ़ कर ,
विषद – पुष्टता पायी ?
क्षण भर-भी न लगा प्रिय ! फूटे ,
कैसी गति अपनायी ?
कितने दृढ़ थे, किन्तु आज तुम—
पथ के बने भिखारी ?
अपनी उस विशालतम–निधि के ,
रहे न अब अधिकारी ?

हृदय–अग्नि के कण बिखराये, करुण बने घुटते हो ?
पाषाण ! कहाँ कुटते हो ?

शान्त–सुखी थे, पर अब उर में ,
भारी व्यथा भरी है ?

अनुभूति गीत

जीवन में सब सहना पड़ता ,
सुख–दुख तो प्रहरी है ॥
समय–चक्र पर लिखी हुई यह ,
'जीवन'—एक कहानी ।
जिसकी सञ्चित आशाओं पर ,
फिरता रहता पानी ॥

जीवन देकर भी न यहाँ प्रिय ! भव–भय से छुटते हो ?
पाषाण ! कहाँ कुटते हो ?

उत्कट पदत्राण धनियों के ,
तेरे ऊपर आते ।
दलितों के पीड़ित पद तुझ से ,
बार – बार टकराते ॥
पर तुम देख रहे अपनी–ही ,
सन्तति की निर्दयता ।
सहते हो छाती पर दुर्नय ,
त्यागे जीवन – ममता ॥

जग के हित दृष्टान्त बने तुम, लोहे से खुटते हो ?
पाषाण ! कहाँ कुटते हो ?

प्रभु के लोचन

प्रभु के विशाल लोचन ।
नित आनन्द–प्रवर्धक–मंजुल, मङ्गल–वरद–यशोधन ।

अभिनव अति सुन्दर सुखद–शीत ,
वह विशद – रूप कल्पनातीत ;
अनुराग – रम्य भर समुल्लास ,
होता जिनमें ज्योतिर्विलास ;
हैं जग के सुख–साधन, प्रभु के विशाल लोचन ।

यह अधर मधुर–मुस्कान–कान्त ,
सुषुमा से सुषुमित सरल–शान्त ;
अरविन्द–मुकुल इव दीप्तिमान ,
शुचि रस–तरङ्ग के हैं निधान ;
मृदु हृदय–जलधि–नन्दन, प्रभु के विशाल लोचन ।

यह मनस्लोक की ज्योति रम्य ,
हैं दिव्य–ज्ञानमय भाव–गम्य ;
औ' सदा एकरस अति अनूप ,
ज्योतिर्मय जिनका सत्य–रूप ;
हैं भव – सङ्कट – मोचन, प्रभु के विशाल लोचन ।

मुक्त

होगये पूरे, अधूरे आज साधन शेष मेरे ।

सम–विषम जीवन–परिस्थिति—
की प्रगति में आज है इति ।
चेतना निस्तब्ध–छाया–सी—
सिहरती, मूक हैं कृति ॥

नियति के सम्भार उतरे, दूर सारे क्लेश मेरे ।
होगये पूरे, अधूरे आज साधन शेष मेरे ॥

अनुभूति गीत

मैं न जड़ हूँ और चेतन,
दूर हैं मुझ से विवेचन।
विश्व की स्मृति अब न मेरा,
कर सकेगी हृदय वेधन॥

मौन मन, यह प्राण जागे, चूर मोहावेश मेरे।
होगये पूरे, अधूरे आज साधन शेष मेरे॥

अर्चना, आराधनायें,
और सारी साधनायें।
शक्तियों से खेलने की,
दूर अब सम्भावनायें॥

आज मुझ में ही समाये, सिद्धि के उपदेश मेरे।
होगये पूरे, अधूरे आज साधन शेष मेरे॥

तिमिर से, आलोक से क्या?
हर्ष से औ' शोक से क्या?
मैं तुरीयातीत, मुझ को—
लोक से, परलोक से क्या?

मुक्त हूँ मैं, मुक्ति मेरा—पथ, सजग आदेश मेरे।
होगये पूरे, अधूरे आज साधन शेष मेरे॥

समाप्त